'जीवन के राग-विराग'

अनिता रश्मि

मणिकर्णिका घाट! सामने जलती हुई एक ताजी चिता। सीढ़ियों पर बैठे चंद लोग। उनमें वह भी...निशांत!...निराश ! हताश ! उसके हाथ में एक शहनाई है। वह शहनाई को सीने से लगाए अज़ब असमंजस में घिरा है। घर से शहनाई उठाकर ले आया था। मात्र इसलिए कि जब बजानेवाला ही नहीं रहा, तो उसकी सबसे प्रिय चीज उसके साथ ही भेज दी जाए।

शहनाई उठाकर निशांत ने जैसे चिता की तरफ हाथ बढ़ाया, किसी ने हाथ थाम लिया।

"नहीं! इसे ना जलाओ। यह उसकी निशानी है।"

एक मन कहे-मासूम की प्यारी वस्तु उसके साथ ही जानी चाहिए।

दूसरा कहे- "मासूम की प्रिय वस्तु को अपने पास सहेजकर रख लो। आखिर इसमें उसकी आत्मा बसती है।...इसमें उसका स्पर्श, उसकी गंध छिपी है।"

अपने मन को सांत्वना देते हुए निशांत ने शहनाई को गले से लगा लिया।

निशांत पिछले तीस वर्षों से शहनाई का जाना-पहचाना नाम। उसके प्रेरणास्त्रोत सुप्रसिद्घ शहनाईवादक बिस्मिलाह ख़ां रहे हैं। निशांत भी विश्वनाथ मंदिर को जाती तंग गलियों से गुजरते हुए जैसे शहनाई की मिठास में उब-चुभ करने लगता है।

उसे लगता, जैसे आज भी गंगा-जमुना संस्कृति के महत्वपूर्ण सुरीले वाहक बिस्मिलाह ख़ां की शहनाई की मधुर ध्वनि मंदिर के अंदर गूँज रही है। वह भाव-विभोर हो उन्हें सुन रहा है। निशांत की आँखें मुँद जातीं और वह देवालय की सीढ़ियों पर बैठा सुरों के बादशाह को अपने अंदर उतरते हुए महसूस करता रहता। बहुत देर बैठकर वहीं उनकी धुन में मगन रहता। सजदे में उसका सर झुका रहता।...विश्वनाथ भगवान और बिस्मिला ख़ां दोनों के।

कितनी-कितनी देर मंदिर में बैठे रहने के पश्चात निशांत गंगा तट की ओर चल देता। वहाँ लहरों के पास बैठ, घंटों शहनाई बजाता रहता। देवालय में बजाने की हिम्मत नहीं लेकिन काशी के पावन गंगा के तट पर उसकी शहनाई की धुन गूँजती रहती।

वह पद्मश्री ख़ां साहब की ऊँचाई तक तो नहीं पहुँच पाया परन्तु ख़ां साहब को जिंदा रखने के लिए संगीत कला केन्द्र खोल प्रशिक्षार्थियों के अंदर इस कला को जीवित रखने की कोशिश करता।

एक दिन निशांत ने पत्नी से कहा था,

"सोचता हूँ, नौकरी छोड़ दूँ। तुम सब सँभाल लोगी ?"

"हूँ! आप जैसा चाहें।"

उसकी सहमति से उत्साहित हो, उसने अपना पूरा वक्त शहनाई को समर्पित कर दिया था।

संगीत कला केन्द्र में चार बैच का प्रशिक्षण शुरू। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली। निशांत ने काफी होनहार शहनाईवादक तैयार किए। उसके अनगिन शिष्य देश-विदेश में नाम कमा रहे हैं।

निशांत का पुत्र अंकुल जब बहुत छोटा था, उसकी शहनाई को हाथों से बड़े प्यार से छुता रहता। निशांत जब रियाज करता, वह मुस्कुराते हुए झूमता रहता। कभी अंकुल होठों से शहनाई को लगा लेता...पूत के पाँव पालने में नजर आ रहे थे।

दस वर्ष का था, जब निशांत ने शुभ्रा से कहा था -

"आज से इसकी तालीम शुरू। यह मेरे साथ डेली सुबह-शाम के प्रैक्टिस के लिए तैयार रहे।"

उसने शहनाई को अंकुल को पकड़ाया था। अंकुल ने पहले तो उसे उलट-पुलटकर गौर से देखा था, जैसे पहचानता ही नहीं। फिर हँसकर फेंक दिया था जमीन पर।

"यह सीख पाएगा?"

ISSN:2583-8849

शुभ्रा की आशंका निर्मूल नहीं थी।
"अभी साथ बैठना शुरू करे पहले। रस्सी से जब पत्थर घिस सकता है, तो कुछ भी हो सकता है शुभ्रा।"
दूसरे दिन से ही अंकुल को सिखाने की कोशिश करने लगा निशांत। वह निशांत के पास बैठ फूँक मारने का प्रयास करता रहता था।
दसेक साल बाद अंकुल के अभ्यास, निशांत की अथक मेहनत का फल मिलना शुरू हो गया था। बारह वर्ष बाद दोनों साथ प्रोग्राम में जाने लगे थे। सुरों की जुगलबंदी में श्रोता मस्त। अलग-अलग समय में राग भैरवी, कल्याण, ललित तो मुलतानी रागों की धार बहती रहती। भीमपलासी भी तो। दक्ष हो चला था अंकुल भी। घंटों संगीत साधना चलती रहती। रात को रात, दिन को दिन नहीं समझा सच्चे सुर साधकों ने।
जब दोनों साथ में शहनाई को होठों से लगाते, रागों की गंगा बहा देते। सच्चे सुर प्रेमियों की आँखों से आँसू बहने लगते। सुर धार में महफिलें आनंदातिरेक में गोते लगातीं।
निशांत ने अपनी इस उपलब्धि पर इतराना प्रारंभ ही किया था कि अंकुल गंभीर बीमारी की चपेट में। दो वर्षों तक बिस्तर पर पड़ा रहा...दर्द-कराह से तड़पता।
सुबह-शाम निशांत प्रशिक्षार्थियों को पूरे मनोयोग से सिखाता। शहर के बाहर जाने का क्रम छूटता गया। उधर अंकुल के हाथ से जीवन की डोर छूटती जा रही थी, तमाम इलाज, एहतियात के बावज़ूद।
अंकुल की बीमारी बढ़ती जा रही। ठीक होने के आसार नहीं।
"कहाँ-कहाँ लेकर नहीं गया। अपोलो, वैल्लोर, एम्स, जसलोक सब अस्पतालों में। पर...।"
दोस्तों से बताते हुए आगे के वाक्य गुपचुप सी सिसकियों में ढल जाते। उसमें घुली कराह ऊपरी सतह पर नजर नहीं आती, उससे क्या। शुभ्रा के आँसू भरे नयन ताड़ लेते।
भारत रत्न बिस्मिला ख़ां ने कहा था एक बारी, जब शिष्या ने उनकी फटी लुँगी की ओर ध्यान दिलाया था,
"मालिक फटा सुर न बख़्शे। बेटी! लुँगिया का क्या है, फटी है, सिल जाएगी। सुर नहीं फटने चाहिए।"
सच्चे सुर साधक के सुर कभी नहीं बिखरे। लेकिन इधर निशांत पाता, उसकी शहनाई के सुर बिखर रहे हैं। जीवन के भी।
"पापा ! मेरी शहनाई वहाँ से ला दें।"
"क्या करोगे?"
"बजाऊँगा।"
"तुम बजा सकोगे? नहीं...!"
"बजाऊँगा। ला दें प्लीज!"
निशांत की हिम्मत नहीं हुई, उसके कमजोर अंदरूनी अंगों को तकलीफ दे। अशक्त बेटे का मन रखने के लिए शुभ्रा ने शहनाई उसके हाथ में पकड़ा दी। मुस्काया था अंकुल। एक क्षीण, दर्दभरी, मरती मुस्कान। उसने शहनाई को होठों से लगा फूँक मारी। पूरा जोर लगाने पर भी जरा आवाज नहीं। वह बार-बार फूँक मारने की कोशिश करने लगा। निशांत ने सर पर हाथ रखा.
"छोड़ दो अंकुल।"
अंकुल के बालों के अंदर तक पसीने में भीग गए थे। माथे पर चुहचुहा रहे थे। कनपटियों से बहकर नीचे आ रहे थे। टी शर्ट भीगा।
"तुम जल्द ठीक हो जाओ। फिर हम इकट्ठे पहले की तरह स्टेज पर परफॉर्म करेंगे।"
निशांत के अंदर दो सालों से जमे आँसुओं का ग्लेशियर पिघलने को बेताब। कठिनाई से रोके रखा। शुभ्रा दूसरी ओर ताके जा रही थी। उसकी आँखों की कोर ने बगावत कर दी थी। अंकुल ने आंखें बंद कर लीं। और शहनाई को होठों से लगाए हुए उसकी बंद आँखें सदा के लिए मुँदी रह गईं।
मणिकर्णिका घाट पर चिता की ओर एकटक ताकता निशांत शहनाई थामे-थामे बेहोश हो गया था।
सबकी जुगत से जल्द ही होश में आ गया। तुरंत उसने निर्णय ले लिया।
"नहीं ! मैं इसे...उसकी अंतिम निशानी को चिता के हवाले नहीं कर सकता।"
लोग कहते रह गए, वह मान नहीं सका।

 ISSN:2583-8849

*****

अब नहीं गूँजता शहनाई का स्वर...न ही घर में, न संगीत कला केन्द्र में। न ही देश-विदेश के मंचों पर। आजकल संगीत कला केन्द्र पर एक बोर्ड लटकता रहता है - यहाँ के सुर खो गए।

हाँ, निशांत घाट पर नित्य देखा जा सकता है। हाथ में एक शहनाई थामे भटकता हुआ। उसका जीवन रीड बिना शहनाई सी हो गई है। नरकट (रीड) के बिना शहनाई कैसे बज सकती है? अंकुल बिना...?

वह घाट पर शून्य में कुछ खोजता हुआ बैठा रह जाता। जिंदगी के सुर सम पर आते ही नहीं।

"देखो वही हैं उस्ताद निशांत!" - लोग इशारा कर एक-दूसरे को बताते।

"कौन? कहाँ?"

"वही, जिसके हाथ में एक शहनाई है। पर अब वे नहीं बजाते।"

"उन्हें सुर सम्राट जगजीत सिंह को सामने रखना चाहिए। बेटे की मौत के बाद भी जगजीत सिंह ने गाना नहीं छोड़ा।"

"जब वे गाते 'चिट्ठी ना, कोई संदेश /ना जाने कौन सा देश/ कहाँ तुम चले गए'...दिल निकालकर रख लेते। पर उन्होंने दर्द को संगीत में डुबो दिया। और भी गहरी हो गई उनकी आवाज़।

"हाँ जी! जीवन ऐसे ही खत्म नहीं होता। करनी भी नहीं चाहिए। निशांत जी को भी ...।"

जाननेवाले कह ही देते। धीरे-धीरे निशांत अन्य बातों से भी बेज़ार होता जा रहा था।

"अंकुल की साँसों की डोर मेरी जिद के कारण ही टूट गई।"

"क्या बोलते हैं! यह अनहोनी थी...होनी थी।" - शुभ्रा ज़्यादा मज़बूत।

"अंकुल लंग्स की बीमारी से मरा। कहीं न कहीं, मैं ही दोषी...। जबरन ले जाता रहा उसे। इधर वह बजाना नहीं चाहता था तो बहाना समझता रहा...!"

आगे निशांत बोल नहीं पाता। गला अवरुद्ध हो जाता उसका। शुभ्रा तमाम अपने को रोक नहीं पाती। दोनों शहनाई को सहलाने लगते।

"इसमें उसकी जान बसती थी लेकिन अंत में...। हम पहले क्यों नहीं समझ सके शुभ्रा?"

अंकुल का रूम पूजा गृह। एक- एक चीजों को सजाकर रख दिया गया। देश-विदेश से मिले पुरस्कार, सर्टिफ़िकेट, मोमेंटो को काँच के कैबिनेट में सजा दिया गया। वहाँ एक ओर दीवान पर मसनद के पास उसकी बड़ी सी तस्वीर! सामने एक स्टूल। स्टूल पर बड़ा सा पीतल का दीया। दोनों नित्य तस्वीर के सामने दीपदान करना नहीं भूलते।

देखते-देखते पक्षियों की परवाज वाले समय ने छः वर्ष निकाल दिए। उस्ताद निशांत की शहनाई कहाँ पड़ी है, खुद उसे याद तक नहीं। परन्तु घाट पर आना एक दिन भी नहीं भूला वह। ना ही अंकुल की शहनाई लाना।

आज भी वहाँ वैसे ही घूम रहा है...हताश-निराश। थोड़ी देर में बैठ गया एक सीढ़ी पर। उसकी आँखों में एक चिता आज भी जल रही है। सामने कई ।

आज के दिन। हाँ, आज के दिन ही अंकुल छोड़ गया था। जिद कर साथ आई शुभ्रा भी सोपान के एक किनारे खड़ी है।

गंगा के जल पर शाम के रक्ताभ सूर्य का बिंब उतर आया। क्षितिज रंगीन है। उन दोनों का ध्यान उधर नहीं। उनकी आँखों में आग की लपटों की ललाई छाई है। शाम ढल रही है। उनके अंदर भी शाम गहरा रही है। अब वे लौटने को उद्यत।

दोनों चुपचाप घर के सन्नाटे की ओर बढ़े।

अचानक निशांत चौंक उठा।

"पींऽऽईं !...पींऽऽऽईं !!"

"यह आवाज़...यह आवाज़? शुभ्रा, तुमने सुनी?"

"हाँ ! सुनी। पर कितनी बेसुरी है।"

"कौन बजा रहा है? चलो, देखें।"

वे आवाज़ की दिशा में बढ़े। हालाँकि सुर दिशाहीन थी। आगे एक दुकान के बाहरी पटरे पर बैठा लगभग 10-11 साल का किशोर शहनाई में उलझा था। और बेतरह उलझे थे उसके सुर। निशांत ने तेजी से आगे बढ़ उसकी शहनाई छीन ली।

ISSN:2583-8849

"इस कदर बेसुरा!...कहाँ, किससे सीखा?"
"हूँ!...आँ...।"
किशोर भयभीत! किशोर भौंचका!
वह डाँटने को हुआ पर पिघल गया। किशोर में उसे अंकुल दिखा। हू-ब-हू अंकुल। बस इसके वस्त्र मैले, फटे। हाथ-पाँव गंदगी से काले। चेहरा सिकुड़ा-सहमा। पैरों में चप्पल नहीं। किशोर के सर पर दाहिनी हथेली रख निशांत कह उठा,
"इसे संवारने की जरूरत है शुभ्रा।"
शुभ्रा एकटक किशोर को देखे जा रही थी। उसके गोरे-चिट्टे अंकुल से जरा भी मेल नहीं। न ही निशांत से कोई साम्य।
"खाँ साहब पूरी जिन्दगी सच्चा सुर माँगते रहे। उस उम्र में उतना नाम कमाने के बाद भी सच्चे सुर के लिए अल्लाह के सजदे में झुकते रहे। वयोवृद्ध होने के बावजूद सुर के बचे रहने की कामना करते रहे। उनका अनुयायी होकर मैं...। मैं कच्चे सुर को नहीं झेल सकता। मैं इसे सिखाऊँगा।"
शुभ्रा अपलक निशांत की बात सुनती रही। सालों बाद "हूँ!...हाँ!!! नहीं!" से बाहर आया था निशांत। सम पर।
निशांत ने किशोर का हाथ पकड़कर खड़ा कर दिया। थोड़ी देर तक निहारता रहा, "तुम सीखते हो?"
"नहीं सीखता।"
"सीखोगे? मैं सिखाऊँगा।"
"हाँ ! सीखूँगा।"
किशोर के अंदर गहरी उत्सुकता और प्रसन्नता की लहर उठी।
"नाम क्या है बेटे?"
"जी, परकास।"
"ओSS!...प्रकाश।"
"कहाँ हैं तुम्हारे माता-पिता? मैं मिलना चाहता हूँ।"
"वहाँ...उधर। अभी आ जाएँगे।"
उसने ऊँगली से एक ओर इशारा किया। उसके स्वर से खुशी छलकी पड़ रही थी। सिकुड़ा, ठंडा चेहरा स्आनेह की उष्मा पाकर गर्म हो फैलने लगा। निशांत के होठों पर भी हलकी से थोड़ी सी ज्यादा मुस्कुराहट आ गई।

दूसरे दिन से ही प्रकाश का प्रशिक्षण घर पर शुरू। निशांत का जीवन फिर से लय-ताल में डूबने लगा। जहीन दिमाग प्रकाश तेजी से सीखने लगा। निशांत अक्सर अपने भीतर उतरता। वहाँ उसे अंकुल का सान्निध्य मिलता। देर तक अंकुल उसके साथ रहता। अपनी तमाम खूबियों के साथ। शहनाई की मिठास में डूबा हुआ।
"उतनी ही तेजी से सीखता है यह।"
निशांत संतुष्ट, शुभ्रा से कहता।
शहनाई की रीड से सरगम बहने लगी फिर। सातों सुर फिर निकल पड़े। निशांत की दुनिया सुरीली होने लगी फिर। प्रकाश भी शहनाई की मीठी आवाज के जादू में उब-डूब करने लगा। बेटे के शहनाई वादन एवं प्रकाश के शहनाई की धुन के बीच का फासला घटने लगा। सच्ची लगन, कड़ी मेहनत और रियाज रंग दिखलाने लगा। पूत के पाँव पालनेवाली बात सच हो रही थी।
अब आहिस्ता-आहिस्ता शांत होने लगा था निशांत। उसकी नस-नाड़ियों में घुले दर्द की चीखें भी। दिल-दिमाग पर पड़ी धूल छँटने लगी थी।
कुछ महीनों में संगीत कला केन्द्र का बोर्ड पुनः चमकने लगा। बोर्ड के साथ किनारे पड़ी उसकी सबसे कीमती शहनाई भी धूल झाड़कर उठ खड़ी हुई। उसे वह अंकुल के साथ जुगलबंदी के समय बजाया करता था, जिसने विदेशों में भी अप्रतिम प्रतिष्ठा दिलाई थी।
रात के नीरव शांति में भी घुलने लगा था शहनाई का सुर! विश्वनाथ मंदिर या पंचगंगा घाट स्थित बाला जी मंदिर के बरामदे पर अक्सरहां चार पैर बढ़ते नजर आते। कोने-कतरे तक से बिस्मिल्ला खां साहब की शहनाई की मीठी तान पुनः निशांत के दिल में उतरने लगी थी। रागों की जुगलबंदी जगाने की पुरजोर कोशिश जारी थी। जिंदगी सम पर आ रही थी। निशांत जीने लगा था अब।

सत्यभामा ग्रैंड, कुसई, डोरंडा, राँची, झारखण्ड

 ISSN:2583-8849